



## प्रस्तावना

शास्त्रों में, जब तीन मुख्य लोक उत्पन्न किये जा रहे थे, सब एक-एक उत्पन्न हो गये, परन्तु अभी बड़ और बंजर बाहुओं में कोई रंग न था। पर ब्रह्माण्ड पर शून्य उग्राह था, जिसमें न सूर्य चमका था और न चन्द्र। पुनः-पुनः और सन्-अन्त में कोई भेद न था। सब बाह्योन्मेष देवता अपने शारीरिक प्रकाश के साथ पृथ्वी पर उतरे, वे अपना भोजन पृथ्वी की मोटाई से लेते थे, इतिहास लोग और पेटुन का स्वभाव प्राकृतिक हुआ, और वे इन की सत्ताओं और सुमानत आदर्शों की एक कृति के बाद अपने लगे। जब उनका प्रकाश कमजोर हो गया तब सूर्य-चन्द्र प्रकट हो गये। बिजली और कृषि की संवत्सा पैदा हुई, और रात्रि-प्रकाश तथा दिन-पुनः-पुनः नियम स्थापित हो गये। तब अधिवास्त्रियों को ऊपर मोताकाश की ओर देखने पर नक्षत्र घूमते हुए दिखाई दिये। बाद की नीचे की ओर दृष्टि डालने पर उन्होंने देखा कि पृथ्वी अधिक दोल होती जा रही है। दो तत्वों, अस्ति और नास्ति ने पृथ्वी का रूप धारण कर लिया और उनके बीच अन्तर्लिप्त में मनुष्य उत्पन्न हुए; मते और साज पवन के प्रभाव से, प्रकृति में अपने मान डग पैदा हो गये। रक्त पर पर्वत बड़ लड़े थे, नक्षत्र ऊपर बिखरे हुए थे, और बड़ पराप्त पंत और बड़ रहे थे। अन्त को उनमें मत-भेद हो गया। लोह के ध्वजनों कोशियों में विभक्त हो गये; तत्व पञ्चोक्त कोशियों में बँटते गये।

हमारे परमपूज्य लोक-अध्यक्ष शास्त्र ने ही अद्भुत तत्व का उल्लेख किया है। उल्लेख बाह्य निदान समझाने हैं और अज्ञात अनुपम



मवाया। इस पर उनका रहना रात्रिगृह में सुनाई दिया, जिससे अंतरंग आत्माओं का उद्धार हुआ।

माता-पिता के प्रेम का बदला चुकाने के लिए जब वे बलिष्ठतु वापस आये तब उन्हें बहुत-से ऐसे शिष्य मिले, जिनकी उनके उपदेशों पर धड़ा थी। उन्होंने सबसे पहले आत्मत कीर्तित्व को उपदेश देकर भिक्षु बनाया।

उन्होंने अपने जीवन में अन्तिम बीसा सुभद्र\* को दी, जिससे उनके जीवन का अन्तिम काल उनकी मूल-अभिलाषा के अनुसर हो।

वे संघ की स्थापना और रखा करते हुए अस्ती धर्म तक जीने रहे। उन्होंने नौ सभाओं में अपने निर्वाण के सिद्धान्त का प्रचार किया।

साधारण अनुयायियों को वे केवल पंचशील की ही शिक्षा देते थे, परन्तु भिक्षुओं को अपराधों के सात स्तरों का आशय सूब खोलकर समझाना करते थे। वे समझते थे कि इस लोक के अधिवासियों के बड़े से बड़े पाप भी शील की वृद्धि से दूर हो जाते हैं, और मेरी विनय की सम्पूर्ण शिक्षा से छोटे से छोटे दोष भी नष्ट हो जाते हैं।

जब गुरुदेव लोगों को उनकी योग्यताओं के अनुसार उपदेश तथा परिश्रम देने की इच्छा करते, तब वे उन सब पुरुषों को छोड़ देते जो दूसरे मनुष्य के लिए अनौब उपयुक्त थीं। अन्त में इस पराश्रम पर भगवान् का धर्मोपदेश-काल जब समाप्ति को पहुँच चुका और वे अपने कर्म में कृतकार्य हो चुके तब उनका प्रतिबिम्ब शांत वृक्षों की शी धर्मियों के बीच सोप हो गया। उस समय मनुष्य और देवता की कौन रहे, सांघ और प्रेत भी शोकांत थे। उन सबके आँसुओं से शांत-तराओं के नीचे की भूमि भीगकर कीबड़ हो गई। जिनकी सबसे

---

\* बुद्ध का अन्तिम शिष्य सुभद्र था।



2

[illegible]

2

अर्द्धशतक विषय-विषय का दायरे के अन्तर्गत की समझ  
है। यह विषय का अन्तर्गत के विषय है। दायरे की विषय के  
दायरे के अन्तर्गत है। है विषय के अन्तर्गत है।

Y

अन्तर्निहित विचार के साथ सम्बन्धित हैं। हमारे विचारों के २,५० करोड़ रूपये हैं, वेदा विचारों के ही आगे की बढ़ावा २५,००० है। साथ ही यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस विचार के विचार के इन विचारों के साथ ऐश्वर्य का साथी सम्बन्ध है।

ब्रह्म के दर्शन करने और अभिप्राय के पूर्ण होने के लिए  
 ही विद्या करने है। ब्रह्म विद्या-विद्या करने के अर्थ विद्या के  
 करने ही ब्रह्म विद्या-विद्या है।

[illegible][illegible]

॥ अथ श्रीगणेशोत्थानम् ॥  
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥













दीखकर, उसे नज़रें पड़े रहना चाहिए। उसका हाँका बग़ावत गढ़ा और बाज़ों उमड़े बग़ुल से ढँका हुआ होना चाहिए। उमड़े गिर पर छोड़ी न हो। यदि उड़े की आवाज़ सेकर बह (खड़ाई के साथ) हमारे स्थानों में घूमे तो कोई शोष नहीं। दलित-प्रदेश में, भिक्षु की छोटी-छोटी खड़ाई अथवा उम देश के अनुकूल किसी प्रकार का घूना पहनने की आवाज़ है।

यह बात युक्तिपूर्वक रथीकार करने पर हमें कि शरीर की रक्षा के लिए हमें बड़ी सरसरी के महीनों में अरथायी रूप से अधिक बपड़े पहनने चाहिए, परन्तु : सन्त और धीमा में मनुष्य की विनय के नियमों\* का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए। खड़ाई पहनकर मनुष्य पवित्र रूप की प्रदर्शना न करे, इस बात की स्पष्ट शिक्षा आरम्भ से ही दी गई थी।

इस बात का धोयणा चिन्ता में भी आ चुकी है कि भिक्षु मय-कुटी के पास पापुका; पहन कर न जा : किन्तु बड़े लोग ऐसे हैं जो सब ही इन नियमों को भङ्ग करते हैं; और भारत में हमारे बुद्ध के नियमों का यह भारी अपमान है।

[ ३ ]

## भोजन के समय एक छोटी कुर्सी पर बैठना

भारत में भिक्षु लोग भोजन के पहले अपने हाथ-पाँव धोते और छोटी-छोटी कुर्तियों पर अलग-अलग बैठते हैं। यह कुर्तियाँ सात इंच ऊँची और एक वर्गफुट चौड़ी होती हैं। उसका आसन घेत का बना होता

\* बुद्ध की बताई हुई नीति को 'विनय' कहते हैं। सारी नीतियों के संग्रह का नाम 'विनय-पिटकम्' है।

† पाठ में 'पुर' लिखा है, जो कि काश्यप के मतानुसार, मरुत में एक प्रकार का जूता है। मालूम नहीं, बुद्ध संस्कृत शब्द क्या है।



## पवित्र ज्ञान अथविषय भोजन की परमात्म

भोजन के विषयों और भोजनियों में हर रीति हैं कि यदि केवल एक ही एक भोजन का खा लिया जाय तो वह अर्थात् (सुखादि) ही जाता है; और जिस वर्गों में भोजन करना तथा या उनका विचार करने का ही किया जाता। भोजन के समान होने ही, जिस वर्गों में भोजन करना तथा या उन्हें उदाहरण एक वर्गों में हर खा लिया जाता है।

हर रीति भोजन और नियंत्रण दोनों में पाई जाती है। हर के मही में मही: प्रत्यक्ष बाह्य (रेखा) में भी प्रयत्न है। कई लोगों में खा लिया है:—कोई हीने के बाद रात में करना तथा हाथ में घोंटा और रीति तथा अर्थात् भोजन में भोजन करना सीधे सभी जाती है। जो लोग विषयों के नियंत्रण पर करते हैं, उन्हें इस भोजन का कुछ लाभ हो सकता है, रात में को भोजन और प्रयत्न है, वे अनुचित वर्गों का अनुसरण करने के लिए दुबटते विचार करते हैं। स्वाभाविक भोजन विषयों का भोजन के अन्तर पर एक दूसरे का स्वयं मही करना चाहिए, अर्थात् हर उस में सुख विषयों विना मही भोजन को मही म करता चाहिए। अर्थात् रीति के अनुसार, विषयों एक एक अनुष्ठान को अर्थात् कर देना है, जो दुबटता सुख करना चाहिए। यदि सुख विषयों विना ही हर दूसरे को छू देना है तो वह दुबटता सुख अर्थात् है: उदाहरण है और उसे अर्थात् सुख करना चाहिए। सुख का स्वयं ही करने पर उसे अर्थात् सुख करती होती है। जो लोग भोजन का करते हैं उन्हें सुख के एक प्रकार में दुबटता सुख चाहिए, उन्हें एक प्रकार में सुख करना चाहिए, और भोजन के स्वयं स्वयं में स्वयं ही अनुष्ठान और मही वर्गों को मही को अनुष्ठान चाहिए।



के दूर नहीं रहने दे, और शत्रुन भरी रहने दे। इन्हीं दो हीन दुष्ट-धर्म का सम्मुख कर रहे हैं उन्हें हम जानते हैं। शत्रुन ध्यान रखना चाहिए। परन्तु धीमे में आधीन बनने में दक्षिण और अक्षिण मोड़न में कभी धेर नहीं किया गया।

[ ५ ]

## सा सुकने के परवान मज़ाई

अब भीड़ का बूँदों तक हाथों की भयानक सज्ज करी। जीभ और हाँसे की धमकुरंधर सज्ज और सज्ज करी। हाँसे की दाँतों मर के आँसे में दाँतों निगूँ और दाँतों की निगुरंधर जीभ से सज्ज किया जान, एवं तक कि बिजनाई का कोई धमका न रह जाय।

सज्जबाज (कुत्ता करने के लिए) किसी सज्ज बर्तन में से जल एक गड्ढे के धमके में डालना चाहिए। यह धमका दाँतों ताया दाँतों पर रखता हो दाँतों में दकड़ा हुआ हो। यदि धमका हाथ से छू जाय तो इसे सज्ज करने की तीन सज्जियों, अर्थात् मर के आँसे, सुती निगूँ और दाँत के रोबर से सज्जना, और धमके की दूर करने के लिए दाँतों में भी डालना चाहिए। एकान्त स्थान में सज्ज बर्तन से दाँतों मीठा मूँ में डाला जा सकता है, परन्तु सार्वजनिक स्थान में ऐसा करने का निषेध है। दो-तीन बार कुत्ता करने से मूँ का सज्ज हो जाता है। ऐसा सिधे बिना मूँ का दाँतों का दूध निगलने की आता करी। अब तक मूँ जल से कुत्ता न कर लिया हो मूँ में दूध की बहुर फेरने रहना चाहिए। निम्नलिखित, सज्ज बातन में सज्ज नेवार सिधे बिना अथवा शत्रुन सिधे बिना, न तो भीड़न के दार हँसी और बहुरन में सज्ज नष्ट करना उचित है, और न दिन-रात अक्षिण और दोषी बने रहना ही ठीक है। यदि कोई अपने जीवन-आन में ऐसा जा-सक जाता है तो उसके कुत्तों का कोई अन्त नहीं रहता।













## उपवास-दिन पर भोजन के नियम

भे भारत तथा दक्षिणी मागर के टीलों में, भिक्षुओं की भोजन के लिए निमन्त्रित करने की प्रवृत्ति का संशेष से वर्जन करेगा। भारत में अतिथि-मेवरा पहले भिक्षुओं के पास आता है, और प्रणाम करते उन्हें पदों पर निमन्त्रण देता है। उपवास के दिन वह उन्हें 'यह टील समय है' कहकर सूचना देता है।

भिक्षुओं के लिए नमों के वर्तनों का ही उपयोग किया जाता है। ये बारीक राल से लगाकर साफ कर दिये जाते हैं। मिट्टी के बोरों वर्तनों का एक बार उपयोग करना अनुचित नहीं। उनका उपयोग हो बुझने पर उन्हें एक खाई में फेंक देना चाहिए, क्योंकि उपयोग में लाये हुए मूलार्थन 'एक हुए' वर्तनों की विन्यास नहीं सुरक्षित रखना चाहिए। अतः भारत में, जहाँ-जहाँ मठों के दिनारे सदाशन हैं, वहाँ, फेंके हुए वर्तनों के डेर लगे रहते हैं, और इनका दुबारा उपयोग नहीं किया जाता।

दानपति के घर में भोजन करने की कोठरी की भूमि गाय के गोबर से सीर दी जाती है, और नियमित अन्तरों पर छोटी-छोटी कुरसियाँ बिछाई जाती हैं; और एक साफ ठितिया में बहुत-सा जल तैयार किया जाता है। भिक्षुगण आकर पहले अपने हाथों के दोताम धोते हैं। सबसे सामने साफ सोटे रखे होने हैं। वे जल की परीक्षा करते हैं। यदि उत्तम कोई बीड़ा न हो तो वे उत्तम पाँव धोकर उन छोटी कुरसियों पर बैठ जाते हैं। वे कुछ समय तक विधाम करते हैं। सब दानपति समय देकर और वह मालूम करके कि सूर्य अब

---

\* अर्थात् उपवास का दिन। वह भिक्षुओं और उनके भक्तजन के लिए धर्मानुष्ठान और जीवन का दिन है और वह एक त्योहार है।



भोजन के समय पादसाग्रा में बाग करनेवाले धूप और दीप चढ़ाते हैं, और सब प्रकार के नैवेद्य दिये हुए भोजन देवता के सामने लगाने हैं। मैं एक बार वन्दन\* विहार (वन्दन) देखने गया था। वहाँ सामान्यतः एक मी से अधिक भिक्षु भोजन बिद्या करते हैं। एक बार, कोई दुपहर के समय, वहाँ सहस्रा पाँच मी भिक्षु आ पहुँचे। उनके लिए दुपहर से ठीक पहले भोजन तैयार करने के लिए समय न था। विहार के एक नीकर की भाता ने तत्काल बहुत-सी धूप जलाई और बाते देवता के सामने भोजन चढ़ाकर उनसे प्रार्थना की—‘यद्यपि महामुनि निर्याण को प्राप्त हो चुका हैं, परन्तु तेरे जैसे प्राणी अभी तक मौजूद हैं। अब इस पवित्र स्थान की पूजा के लिए वहाँ प्रत्येक स्थान से भिक्षुगण प्यारे हैं। हमारा भोजन उनके लिए बम न निकले; क्योंकि यह तेरी शक्ति में है। इषा करके इस समय को मनाइए।’ सब सब भिक्षुओं को बिटला बिद्या गया। भोजन उस भारी भिक्षु-समूह के लिए पर्याप्त निकला, और सामान्य रूप से जितना पहले बचा करता था उतना बच भी रहा। मैं स्वयं उम स्थान की पूजा के लिए वहाँ गया; इसलिए मैंने उस वाले देवता की प्रतिमा देखी जिसके सामने भोजन की प्रचुर भेंट चढ़ाई गई थी। (गया के समीप) महायोगि विहार के नाग महामुखिलिन्द† में ऐसी ही अलौकिक शक्ति है।

भोजन परोमने की विधि आगे दी जाती है। पहले कोई अंगूठे के परिमाण के छदरक के एक-एक या दो-दो टुकड़े (प्रत्येक अतिथि को) परोसे जाते हैं और साथ ही एक पत्ते पर डेढ़-डेढ़ घमचें भर नमक दे दिया जाता है। जो मनुष्य नमक परोसता है वह, हाथ जोड़े हुए प्रधान भिक्षु के सम्मुख घुटनों के बल झुककर, पीरे से कहता है ‘सम्प्रागतम्’।

\* पुशिनगरान्तर्गत मुबुद्र-वन्दन का एक विहार।

† महावग्न में लिखा है कि मुखिलिन्द बृद्ध की रक्षा करने तथा उनका उपदेश सुनने आता था।









बोर्न ४०० मोटर्स हैं। इस कार के इन्जन सीलमन्तन नहीं किया गया। बर्लिन में ही इस कार को दो बार आग लगी होती थी जिस की कारण कार का सर्वोपरि भागों में नष्ट हो जाने का खतरा था।

आपका भोजन करने के लिए और बना बना खाने के लिए, बड़ी लापरवाही से आपका दिमाग को संभाल दिया जाता है। अगर ये सारे का आपका ध्यान होता है; दसियों डॉलर में आपके जीवन सेवा हुआ जाता (आपका या रॉय का नाम) बना जाता है। अगर ये सारे का आपका ध्यान कम करना, आपका स्वास्थ्य में होता है। दसियों डॉलर में और दूसरे स्वास्थ्य-भूमि को खरीद कर है जो कि आपका है।

यों में, रूप और बर्णों सब बड़ी दिव्य हैं। बौद्धों के लिये और जहाँ वे भी वास्तुओं की इनकी प्रशंसा है कि उनका बड़ा निम्न रहित है। यहाँ बौद्ध वास्तुओं और लक्षणों होता है; यहाँ भी वास्तु-कला और भूमि के भीतर लक्ष्मणों काट पड़ा है जो बड़ा है।

भारत के सबसे भाग्यी से लोगों में लोग रहने प्रकृत का प्यार, क्षमा, स्वर्ण, मर्यादाओं में रहने, इतिहास के अधीन में रहने हैं; उनका आत्मसात और अविनाश मोरोन रहने हैं और उनसे बड़ी हो जाने का रहने का कोई बख्त नहीं होता।

रक्षियों मारने के इन डोंगों में जखान के दिन एक बड़े एलि-  
फाथ में अतिथि दिया जाता है। पहले दिन शकस्ति निज-कहू  
मुनारी डू डू (मुनार) में बनाया हुआ मुनारियन लेता, और एक  
पानी में एते पर चिने हुए पोंडुमें बाबन तैयार करता है। इन  
सोने पोंडों को एक बड़ी पत्ती पर चुनकर एक छोटे बात्र में डंक  
दिया जाता है। एक मुनारी सोने में जल शकस्ति रख दिया जाता है,  
और इन पत्तों के सामने ही भूनि पर जल छिड़कर दिया जाता है।  
ये सब करने हो जाने पर निशुजों को मोहन के लिए बुलाना जाता

















१. संग्रही, जिनका अनुसार "दूरा बबु" लिखा जाता है।

२. उत्तरानन्द, जिनका अनुसार "ऊपर का परिच्छर" लिखा जाता है।

३. अन्तर्बान, जिनका अनुसार "भीतर का परिच्छर" लिखा जाता है।

ऊपर बड़े गये तीनों बाँधर रहकाने हैं। उत्तर के देतों में भिक्षुओं के ये बाँधर अपने गेरे रङ्ग के कारण प्रायः बाजरा रहकाने हैं। परन्तु इन पारिवर्गिक शब्द का जिनमें में व्यवहार नहीं हुआ।

४. पात्र।

५. निषीदन, अर्थात् बैठने अथवा लेटने के लिए कोई चीज।

६. परिष्कारण, अर्थात् पानी की छाननी।

दोहायी के पास ये छः परिष्कार होने चाहिए।

लेख अनिष्टानं वस्तुनि निम्नलिखित हैं—

१. संग्रही, एक दूरा बबु।

२. उत्तरानन्द, ऊपर का परिच्छर।

३. अन्तर्बान, भीतर का परिच्छर।

४. निषीदन, बैठने अथवा लेटने की नटाई।

५. (निषीदन) एक अन्तरीय वस्तु।

६. प्रतिनिषीदन (एक दूसरा निषीदन)।

७. सङ्कुक्षिका, बटन की ठकनवाला बन्डा।

८. प्रति-सङ्कुक्षिका (एक दूसरी सङ्कुक्षिका)।

९. (बाध-शोध्यन), शरीर पोछने का तौलिय

१०. (मुक्त-शोध्यन), मुँह पोछने का तौलिय



होते हैं ही संसार रखने का विधान था, और धूर्ति बीमारी के मध्य इसकी आवश्यकता होती है, इसलिए और प्रकार में इसे प्रयोग में लाया चाहिए।

बायोक और मोटे रोमन की भांति बुद्ध ने भी है। यदि जान-भूकर मोह-भ्रम की जाय तो वह धर्म के पान की भांति रखी जायेगी; परन्तु यदि जान-भूकर न हो तो, बुद्ध के बचनामुसार, कोई पान न लगेगा। तीन प्रकार के बुद्ध मानें ऐसे मानें छत्राने लगे हैं, जिसके लाने में कोई पान नहीं। यदि इस विधान के भाव की मद्देनता की जायगी तो कुछ न कुछ अन्याय, बह धोड़ा भले ही हो, अवश्य लगेगा।

(तीन प्रकार का मान लाने में), हमारा हृदय का कोई मद्दुल्ल नहीं होता, इसलिए हमारे पान पर ऐसा कारण अवश्य हेतु है जो हमारे मनो-भ्रम को निवारण बना देना है।

ऐसे काम, जैसा कि रोमन के लोगों की बुद्धिमानता स्वयं कारण मानता, अवश्य लोगों की हृदय होने देखता, उन लोगों का तो रहना ही बना जो अनिम मोह की भांति रखने हैं, सामान्य लोगों के लिए भी उचित नहीं। ये धर्म, इस दृष्टि में देखने पर, सर्वथा अनुचित सिद्ध होते हैं। परन्तु मान लीजिए कि कोई धान्यवि (कोई ऐसी वस्तु जैसी रोमनी वनडा) साधारण भोज करता है और जिस "अनुभव" कारण उस धान्य की स्वीकार कर लेता है तर्हि तदनुसार में अन्याय उत्पन्न बना रहे; तो इस धर्म में उसे कोई पान नहीं लगेगा। भारत में विधुओं के धर्म में ही वे टोट-विधानें लीं और निवे जाते हैं, वनड के लाने-भाने पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। उनसे विधान में लीव का संबंध दिन में उचित नहीं लाने।

रोमन के लोगों का काम हीन है, और जो रोमन लाने बनवाना जाता है वह भी लीन ही रहना है; वह बड़ी सुन्दरता बीड है, और (एकले के लिए) इसका उपयोग विधि है। रोमन









जिन्हें जब कभी मरु में भेजे जाते थे, कभी (भिखुओं की) भिक्षुओं में कभी जाते थे, बाहर उनके हाथ छोटी रेशम लपेटों से बांधी जाते बांधे जाते थे। कभी थे। उस समय एक दिना में भिक्षु (जिन्हें मरी) कर्मिक-र (भिक्षु-र) नाम का एक भिक्षु था। वह उस समय बोर्ड की लपेटों का था। उसका आचरण बहुत ही उत्कृष्ट और उसकी बोधि अत्यन्त गहरी थी। वह न केवल भिक्षु का ही वास्तवीय जीवन का बाह्य रूप दिखाते थे बल्कि वास्तव में भी पुण्य-पुण्य भिक्षु था। भिक्षु के पुण्य-पुण्य में उनकी पुण्य भिक्षु-पुण्य-र के रूप में होती थी। वह से अपने दोस्तों की लपेटों में अपनी लपेट और बाह्य के लपेट, किसी लपेट के साथ कामने-कामने होकर कभी बाह्य नहीं थी। वे भी जब उनके पास आते थे, तब वह (अपने कपड़े में) बाहर आकर उनके भिक्षु था। एक बार मैंने अपने अपने लपेटों के आचरण का बाह्य पुण्य बोधि वह वास्तव भिक्षु मरी हूँ। अपने उत्तर दिया—'मेरे स्वभाव का सामाजिक अनुशासन से भरा हुआ है, और ऐसा दिने दिया है इसके लोभ को बन्द मरी कर लपेटों।' यद्यपि पुण्य-पुण्य में हमारे लिए (भिक्षुओं से बांधी जाते बांधे जाते) निवेद्य मरी दिया, तो भी, यदि छोटी वास्तवों को रोहने का प्रयोजन हो तो यहाँ उचित है (कि उन्हें दूर रखा जाय)।

सातव दिना के लपेटों की लपेट बड़ी और १,००० से अधिक है। इसके अधिकार में जो भूमि है, उसमें २०० से अधिक लपेट है। ये भूमि-लपेटों की लपेटों के लपेटों में (विहार को) बाह्य में होती है। इस प्रकार धर्म का सम्बन्ध लपेट बना लपेट है, जिसका बाह्य लपेट (इस बात के कि) दिने के (अनुसार लपेट-लपेट आचरण दिया जाता है) और कुछ मरी।

अच्छा, अब हम घर क्यों छोड़ते हैं ? इसका कारण यह है

















सोचना होता है, जहाँ कुछे जगहों जगहों की ही के साथ दुःखानुभव  
रहता रहता है, यदि हम दोनों गिरों को (सामने) बीच बाँध (जुताये  
और बाँधने हो। यदि बाँध की देरी बहुत लम्बी हो तो हमें उनको  
बाँधना पड़ता है; यदि बहुत छोटी हो तो उसमें कुछ और जोड़ना होता  
है। यदि बाँध के दोनों गिरों को भी देना या बाँधना नहीं चाहिए।

सारा कहने की ऊपर रही। रीति सर्वात्मिकादिबिधान को हमारे  
निवासों के समान जाननी है। यह परिभाषा मिश्रण (—यदि)  
ब्रह्मणो है, जिसका चीनी में जमे है 'सारा कहने की रीति-सूत्र रीति।'  
(यदि) अन्य की चीनी एक जंगली के समान होती है। जूने का  
लम्बा, मोटे का बन्धन, इसादि गीत हो चारों पक्षों; दोनों को आता है।  
विन-मूल्यों में बलान के रस्ते जैसी बहुत के उपयोग की आता नहीं।

जब हम छोटी बुद्धों अपना लम्बी के बुद्धों पर बैठने हो, तब  
हमारे अपने 'निवास' के ऊपरी भाग को अपने उत्तरीय की भूम के नीचे  
रखना, और साया को सीधे से ऊपर सोचना होता है, जिसमें यह  
(आत्म पर) मुहारी जगहों के नीचे आ जाय। मुहारे दोनों धुने ठीके  
होने चाहिए, परन्तु मुहारी नरह के नष्टा रहने में कोई दोष नहीं।

सारा 'निवास' मनुष्य की नाभि से लेकर उसके टखनों की हड्डियों  
में चार जंगली ऊपर तब दाँने रहे, यह एक ऐसा नियम है जिसका  
पानन उस समय दिया जाता है जब कि भिक्षु किसी सामान्य मनुष्य  
के घर में होता है। परन्तु जब हम बिहार में हों, तब नरह के निषेध  
अपेक्षा की सुना रखने की आता है। यह नियम स्वयं बुद्ध ने बनाया  
था, और इसने अपनी इच्छा के अनुसार परिदत्त नहीं करना चाहिए।  
जिसका के विरुद्ध बाने करना और अपनी स्वाधरर इच्छा पर चलना  
जड़ित नहीं। जो निवास हम करने हुए हो, वह यदि लम्बा है और भूमि से  
हटा है, तो हम एक ओर तो किसी अलग भवन के दिने हुए गुरु दान  
की लम्बा कर रहे हो, और दूसरी ओर गुरुदेव के आदेशों का उल्लङ्घन  
कर रहे हो।



जैसे बच्चे का बिल्ला और एक आलस्य बिल्लाई है  
 बिल्ला के लिए बच्चा है; और बच्चे औरक को बिल्ला के लिए एक  
 लोभी को बिल्लाई बिल्ला है। फिर है और बिल्ला का बिल्ला है और एक  
 बिल्ला बिल्ला बिल्लाई के बिल्ला के बिल्ला का बिल्ला है; बिल्लाई  
 बिल्ला के बिल्ला का बिल्ला बिल्ला का बिल्ला के बिल्ला बिल्ला है बिल्ला  
 है, और एक बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला का  
 बिल्ला के बिल्ला का बिल्ला है और कि एक बिल्ला बिल्ला के बिल्ला के  
 बिल्ला है।

बिल्ला और बिल्लाई बिल्ला बिल्लाई का बिल्ला के बिल्ला बिल्लाई का  
 बिल्ला के बिल्ला के बिल्ला बिल्ला के बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला  
 के बिल्ला है और बिल्ला बिल्ला, और बिल्ला के बिल्ला बिल्ला बिल्ला  
 बिल्ला बिल्ला है।

बिल्ला और बिल्लाई के बिल्ला के बिल्ला बिल्ला है, और बिल्ला  
 बिल्ला और का बिल्लाई के बिल्ला कि एक बिल्ला है, एक बिल्ला  
 बिल्ला बिल्ला है। बिल्ला और बिल्लाई बिल्ला के बिल्ला, बिल्ला  
 बिल्ला बिल्ला है, का एक बिल्लाई बिल्ला बिल्ला बिल्ला के बिल्ला  
 बिल्ला है। बिल्ला बिल्लाई बिल्ला के बिल्ला बिल्ला है, और  
 बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला है। बिल्ला के  
 बिल्ला के बिल्ला बिल्ला बिल्ला है बिल्ला बिल्ला के बिल्ला बिल्ला  
 बिल्ला बिल्ला और बिल्लाई बिल्ला बिल्ला बिल्लाई बिल्ला (बिल्ला)  
 बिल्लाई का बिल्ला बिल्लाई का बिल्ला है और बिल्ला बिल्ला और  
 बिल्ला का बिल्ला बिल्ला बिल्ला और बिल्ला बिल्ला। का बिल्ला बिल्ला  
 बिल्ला कि बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला के बिल्ला है। बिल्ला बिल्ला के  
 बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला और बिल्ला के बिल्ला-बिल्ला के बिल्ला  
 बिल्ला बिल्लाई का बिल्ला बिल्ला है।

बिल्ला और का बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला  
 बिल्ला बिल्ला बिल्ला बिल्ला के बिल्ला बिल्ला बिल्ला का बिल्ला बिल्ला

मयन, यद्यपि कर्म-द्वारा कभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ तो भी, पवित्र समझा जाता है। (४) वह स्थान है जिसे सङ्ग ने शिरकात से छोड़ दिया हो। यदि सङ्ग वहाँ फिर आये तो वही स्थान, जिसका पुरातन काल में उपयोग हो चुका था, पवित्र हो जाता है। परन्तु उन्हें अनुष्ठान (कर्म) किये बिना वहाँ रात न बितानी चाहिए। (५) कर्म और धोषणा दोनों द्वारा प्रतिष्ठित भूमि है। इसका वर्णन मूलतत्त्वार्थस्तोत्रादिनिर्णयकृत-कर्मन् में है।

जब इन पाँच पवित्र नियमों में से एक पूरा हो जाय, तब, ब्रह्म कहता है कि सब भिक्षु इसमें दुहरा भ्रान्त हो सकते हैं—(१) भीतर पकाना पकाना और बाहर बटोरना; (२) भीतर बटोरना और बाहर पकाना, दोनों दोषरहित हैं।

यदि भूमि की अभी प्रतिष्ठा न हुई हो तो उस स्थान पर लौने या रहने से पाप होता है।

विहार (सङ्ग के लिए) निवास-स्थान का एक प्रचलित नाम। इसकी प्रत्येक कोठरी में कच्चा और पका हुआ भोजन रक्खा जा सकता। यदि विहार में सोने की आज्ञा न हो तो उस समय वहाँ रहनेवाले भिक्षुओं को बाहर जाकर किसी दूसरी जगह निवास करना चाहिए भारत में सम्प्रदाय की रीति सारे विहार को 'पाकशाला' के रूप में प्रतिष्ठित करने की है, परन्तु इनके एक भाग को लेकर उससे पाकशाला का काम लेने की भी आज्ञा ब्रह्म ने दी है।

यदि कोई व्यक्ति अपने कपड़ों की पवित्रता की रक्षा के लिए स्नान की प्रतिष्ठा किये बिना विहार से बाहर सो जाता है तो वह निन्दनीय है। कपड़ों की पवित्रता की रक्षा के लिए धर्मसंगत स्थानों वृक्षों के नीचे की जगहों (या गाँव में) दारवादि के बीच भेद है।

स्नान की रक्षा केवल स्त्रियों से रखवाली के विचार से ही नहीं क्योंकि (स्त्री) सेविका कभी-कभी पाकशाला के भीतर आ जाती है, और फिर भी (प्रतिष्ठित) पाकशाला प्राप्त नहीं समझा जाता, (इस

प्रकार त्रिषों को छोड़कर प्रतिष्ठित होने पर भी स्थान परिवर्त होता है।) जब मनुष्य रात में जाता है तब उसके पास तीन चीयों के होने का तात्पर्य त्रिषों में अपनी रक्षा करना नहीं होता। तब स्नान (बिहार के छोटे अधिष्ठाता) का तीन चीयों के साथ बिहार के राज्यों की बेतमन करना, विचारक जब कोई स्त्री भीतर आवे, एक बहुत बड़ी रीति है।

[ १४ ]

### पाँच परिपदों का ग्रीष्म-एकान्त (वर्ष)

पहला ग्रीष्म-एकान्त पाँचवें चन्द्र के वृज्यवर्ष के पहले दिन होता है, और दूसरा ग्रीष्म-एकान्त छठवें चन्द्र के वृज्यवर्ष के पहले दिन; केवल इन्हीं दो दिनों में ग्रीष्म-एकान्त आरम्भ करना चाहिए। इन दो के बीच ग्रीष्म-एकान्त को किसी और दिन आरम्भ करने की पुस्तक में आज्ञा नहीं। पहला ग्रीष्म-एकान्त आठवें चन्द्रमा के मध्य में समाप्त होता है, और दूसरा नवें चन्द्रमा के मध्य में समाप्त होता है। जिन दिन ग्रीष्म-एकान्त बन्द होता है, भिक्षुगण और सन्यास भक्तजन पूजा की महाप्रतिष्ठा करते हैं। उक्त समय पर समा होती है।

विनय (विनय-मंडल, अध्याय ७) में कहा है—यदि (बाहर जाने के लिए) उचित अवसर हो, तो मनुष्य को एक दिन की अनु-पत्ति के लिए आज्ञा लेनी चाहिए।' इस वचन का अर्थ यह है कि क्योंकि मनुष्य को बहुत-से अवसर (अर्थात् मौसम के लिए निमग्न, या कोई दूसरे काम) मिलते हैं इसलिए उसे अपने दिनों की अनुपत्ति की आज्ञा लेनी चाहिए, अर्थात् एक रात में करनेवाले काम के लिए मनुष्य को एक दिन की आज्ञा लेनी चाहिए, और इसी प्रकार मल दिन तक (आज्ञा ली जा सकती है), परन्तु मनुष्य निम्न-निम्न व्यक्तियों के पास ही जा सकता है। यदि (जो मनुष्य को मिलने का) दूसरी बार अग्रोवन हो तो विनय कहती है कि मनुष्य को दूसरी बार आज्ञा



भिक्षुगण मेघों वगैरे कुहरे के सदृश इकट्ठे हो जाते हैं। वे लगातार दीपक जलाते और धूप तथा पुष्प चढ़ाते हैं। अगले दिन सबेरे वे सब ग्रामों और नगरों के गिर्द जाते हैं और सच्चे हृदय में सारे चैत्यों का पूजन करते हैं।

वे छत्तादार गाड़ियाँ, पालकियों में प्रतिमार्गे, ढोल और आकाश में गूँजते हुए दूसरे बाजे, नियमित प्रम में (मूलार्थतः बड़े हुए और सजे हुए) और चढ़ाये हुए, सूर्य को टंकते और लल्लोपत्तो करते हुए भ्रष्टे और छत्र लाते हैं; यह 'सा-भा-किन-ली' (सामग्री) कहलाता है, जिसका अनुवाद 'मिल' या 'भीड़ लगाना' है। सभी बड़े उपवसतय-दिन इस दिन के सदृश होते हैं। पहले पहर के आरम्भ में (प्रातः ९ बजे से ११ बजे तक) वे विहार में वापस आ जाते हैं। दुपहर को वे महोपवसतय-प्रक्रिया करते हैं, और तीसरे पहर हाथों में ताड़ा नागरमोषा का गुच्छा लिये इकट्ठे हो जाते हैं। इसकी हाथों में पकड़कर या पैरों के नीचे रोंदकर जो उनकी इच्छा होती है, करते हैं, पहले भिक्षु, फिर भिक्षुनियाँ; इनके अनन्तर सदस्यों की तीन निम्न श्रेणियाँ। यदि आशंका हो कि संस्था के बड़ी होने के कारण समय बहुत लग जायगा तो संघ अनेक सदस्यों को इकट्ठे जाकर प्रचारण-प्रक्रिया कराने की आज्ञा दे देता है।

इस समय, या तो सामान्य भक्तजन दान देते हैं, या स्वयं संघ उपहार बाँटता है, और सब प्रकार के दान सभा के सामने लाये जाते हैं। तब पाँच पूज्य ध्वजित (पाँचों परिपदों में से एक-एक ( ? ) सभा के मुखियों—स्वविरों) से पूछते हैं—'ये वस्तुएँ संघ के सदस्यों को दी और उनका अपना भोग बनाई जा सकती हैं या नहीं?' स्वविर उत्तर देते हैं—'हाँ बनाई जा सकती है।' तब सब बपड़े, चाकू, मुदरियाँ, मुतरियाँ इत्यादि लेकर समान रूप से बाँट दी जाती हैं। (बुद्ध की) शिक्षा ऐसी ही है। इस दिन चाकू और मुतरियाँ भेंट करने का कारण यह है कि वे चाहते हैं कि उनकी ग्रहण करनेवालों को (तीक्ष्ण) बुद्धि और प्रज्ञा मिले। जब इस प्रकार प्रचारण समाप्त हो























छड़ी का टुकड़ा लो; गिरे से चार अंगुल पर हों, छड़ी के मुन्डों के रूप में, भुकाओ । इसका छोटा गिरा ऊपर से उठा रहे चानु साथ ही दूसरा (सम्बा) गिरा छड़ी के सम्बन्ध भाग से जलग न होने पावे । सम्बाहू को, जब छड़ी के सम्बन्ध गिरे को भूमि के साथ रक्खा जाता है, तब इसके सम्बन्ध भाग को छाया छड़ी के दिगन्ततम भाग पर पड़ती है । पड़नेवाली छाया को चार अंगुल के साथ मापा जाता है । यदि छाया ठीक चार अंगुल भर सम्बो हो तो यह माप एक पुरख (दीख)\* कहलाती है, और इस प्रकार समय को माप इनके पुरख या कभी-कभी एक पुरख और एक अंगुल या आध अंगुल, या बेइत एक अंगुल इत्यादि (जब ठीक एक पुरख के बराबर माप न हो) चलती रहती है । इस रीति में (समय के भेद) अंगुलों को गिनाने और छटाने में जाने और सम्मने जाने है ।

(इन्तिझ की टीका)—पुरख का अर्थ है 'मनुष्य'; चार अंगुल मात्र की छाया को 'एक-पुरख' कहने का कारण यह है कि जब सम्बन्ध छड़ी, जो स्वयं चार अंगुल होती है, की छाया भी दिगन्ततम छड़ी पर सम्बाई में चार अंगुल हो, तब भूमि पर पड़नेवाली मनुष्य की छाया उतनी ही सम्बो होती है, जितनी कि उस मनुष्य की वास्तविक उँचाई । जब सम्बन्ध छड़ी की छाया दिगन्ततम छड़ी पर सम्बाई में आठ अंगुल हो, तब भूमि पर पुरख की छाया उसके शरीर की उँचाई से ठीक दुगुनी होगी । यह बात मध्यम परिमाण के पुरख की है; सब जनों की आकाररूप से नहीं । इस रीति से और मापे भी ली जाती है ।

\* पुरख का अर्थ, मान के रूप में प्राप्त होता है एक मनुष्य की सम्बाई जिसने अपनी बाँहि और उँगलियाँ फैलाई हुई हो । परन्तु इन्तिझ के अनुसार इसका अर्थ चार अंगुल \* ।

† इन्तिझ का यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता । उसके साथ इसका एक अंश होना जरूरी है ।







(हमारे ही हीरा) — भारत के विद्यार्थी भी ऐसे कह सकते हैं कि जो विश्वको व मिलने हैं और उनमें समाजिक विद्या की शिक्षा प्राप्त है। व महाकारियों को मनुष्य की स्थायी संपत्ति है भोजन नहीं विद्या का चाहिए। क्योंकि दुष्ट की शिक्षा में हमारा निर्देश है परन्तु यदि हमें मनुष्य के लिए कोई भारी काम दिया हो तो उसकी सीधे सीधे अनुसार उन्हें विचार में भोजन मिलना चाहिए। परन्तु सामान्य जीवनो के लिए बनाया हुआ या महाकारियों के उपयोग के लिए नहीं बना दिया हुआ भोजन महाकारियों को देने में कोई दोष नहीं।

दुष्ट की छाया मान मरी में लीप हो गई है, और उसके सेंद्र की योग्य मुद्रबूट से अन्वर्धन हो गई है; हमारे पास बिना अहंता ऐसे ही जो पवित्र धर्म का उपदेश दे सकते हैं?

एक छात्र में इस प्रकार कहा है—‘जब महावेत्तरी में अपनी अर्धे तक की सब सारे मासों भी एक दूसरे के परधान् धार्य मयों। संसार और भी अधिक विचार में मिला हो गया। मनुष्य को (मैत्रिक विषय का) उल्लङ्घन बिना बिना अपने विषय में खोजन करना चाहिए।’

सभी धर्मपरायण लोगों को धर्म की रक्षा में मिल जाना चाहिए। परन्तु यदि तुम, आत्मी और निरलोभ होने में, मानवी प्रवृत्ति को बाध करने योग्य तो तुम मानवी और देवी को क्या करोगे जिनका नेतृत्व तुम्हारे सिरुद है?

विद्यन में कहा है—‘जब तक कर्माचार्य हैं, मेरे धर्म का नाम न होगा। यदि काम (नियमों) को रखने और संभाषनेवाला कोई न होगा तो मेरे धर्म का अन्त हो जाएगा।’ यह भी कहा है—‘जब तक मेरे उपदेश विद्यमान हैं, मैं जीता हूँ।’ ये छात्रों बातें नहीं, परन्तु इनमें गहरे अर्थ हैं, इसलिए इनका यथायोग्य सम्मान होना चाहिए। फिर मैं इसी को बहिष्कृत भाषा में प्रकट करता हूँ—

गुरुदेव की छाया लीप हो गई है, और धर्म के प्रधान उच्चपरम



























साधारणतः जो रोग शरीर में होता है वह बहुत अधिक खाने से होता है, परन्तु कभी-कभी यह अति परिश्रम, या पहला मोड़न पचने के पूर्व ही दुबारा खा-ने से उत्पन्न हो जाता है; जब रोग इस प्रकार उत्पन्न होता है तब इसका परिणाम विपरीत होता है, जिसके कारण मनुष्य को कई रातों तक लगातार पीड़ा-बुद्धि से दुःख उठाना पड़ता है।

वास्तव में ऐसे परिणाम स्वल्प होनेवाले रोग के कारण को न जानने और औषध करने (मूलार्पण, शान्त करने और रक्षा करने) की विधि को न समझने से पैदा होते हैं। कहा जा सकता है कि लोग बिना हेतु के खाने रोगमुक्त होने की आशा करते हैं, ठीक उन लोगों के समान जो, उत्पन्न हो जाने की इच्छा रखते हुए, इसके मोते पर बांध नहीं बांधते; या उन लोगों के समान जो वन की काट डालने की कामना करते हुए, वृक्षों को उनकी जड़ों से नहीं गिराते, किन्तु धारा या कौपलों को अधिक से अधिक बढ़ने देते हैं।

क्या यह खेद की बात नहीं है कि रोग मनुष्य को उतना वर्ज्य और अवन्याय करने से रोक देता है ? मनुष्य के लिए अपने गौरव तथा प्रसाद को खो बैठना वास्तव में कोई छोटी बात नहीं, इतना ही नहीं कि उर-मुक्त बातों का वर्जन कर रहा हूँ जिन्हें मुझे जाता है कि पाऊँ एक मुर्दापि पुनरावृत्ति देताकर आनति नहीं करे। मैं चाहता हूँ कि एक पुराना रोग बहुत सी औषधियाँ खर्च किये बिना ही शान्त हो जाय और नया रोग एक खान, और इस प्रकार बंध की आशयनता न हो;— तब शरीर (अर्थात् शरीर मूलों) की स्वल्प अवस्था और रोग के अनाव की आशा की जा सकती है। यदि लोग, विशिष्ट-वास्तव के अध्ययन से बुद्धि का तथा अपना हित कर सकें तो क्या यह उपकार की बात नहीं है ?

\* मूलार्पण—‘रात का मोड़न पचने के पहले सबरे का मोड़न, और सबरे का मोड़न पच जाने के पहले दोनहर का मोड़न खाने से।’



हम वारी रागों होना हैं, जब तक कि रोंग विनकुन मान न हो बान ।  
 रोंग की निरुति अमान हो हो बानगे । यदि बानुन बानुन करे  
 कि अमानन में कुछ नोवन रा रान है, तो बने रोंग की रानि पर के  
 राना का मरुतान विनन अरिह हो मने रान रान रोंग और रान  
 मने के निरु हान में रोंगों बानन बानिह । जब तक नोवन का अर-  
 निहान विनकुन न निहान बान रानों का रोंग और निरु रान-मरुत  
 निहानन वारी रागों बानिह ।

[illegible][illegible]



उस देश के पौधों भागों के योग इसी पर खसने हैं । इसमें सबसे महत्व का नियम उपवास है ।

विषो, जैसा कि शरीर के बाड़े को धिन्धिया उपवास रीति में नहीं करना चाहिए । उपवास की अवस्था में, सुस्वा और काम करना बिलकुल छोड़ देना चाहिए ।

सो मनुष्य अपनी यात्रा कर रहा है, उसे उपवास में खाने से कोई हानि नहीं; परन्तु जिस रोग के लिए वह उपवास कर रहा हो, वह सब निवृत्त हो जाय, सब उसे अवरुध दिखाना चाहिए, और ताजा उबला हुआ भात पाना और भरी भानि उबला हुआ कुछ मसूर का जल इसी मसाले के साथ मिलाकर पीना चाहिए । यदि कुछ ठण्ड मालूम हो तो शंखोत्त जल को कुछ काशी गिर्ब, अदरक या पिप्पली के साथ पीना चाहिए । यदि जुकाम मालूम हो तो बासगरी प्याठ (पलायट्ट) या जंगली गई लपानी चाहिए ।

चिकित्सा-शास्त्र में कहा है—‘मोठ के सिया चरपरे या गरम स्वाद की कोई भी चीज सरदी को दूर कर देती है ।’ परन्तु यदि दूसरी चीजों को में साथ मिला लिया जाय तो भी अच्छा है । जितने दिन उपवास शिवा हो उतने दिन शरीर को शान्त रखना और विभाम देना चाहिए । ठण्डा जल न पीना चाहिए; दूसरे भोजन बंद के परामर्शानुसार करने चाहिए । यदि बावलो का पानी पिया जायगा तो कफ के बढ़ने का डर रहेगा । ठण्ड के रोग में खाने से कुछ हानि न होगी; ज्वर के लिए बंदर का बवाय यह है जो बड़वे गिनझ (Aralia quinquifolia की जड़) को भली भाँति उबालने से तैयार होता है ।

घाय भी अच्छी है । मुझे अपनी जन्म-भूमि की छोड़े घीम से अधिक बंद घीम चुके हैं, और बेघल यह सार गिनसेझ का बवाय ही मेरे शरीर की औषध रही है और मुझे बताचित ही कभी कोई घोर रोग हुआ है ।









यद्यपि चीन में (रात के समय) पांच पहर, और भारत में चार पहर होते हैं, परन्तु विनेता की शिक्षा के अनुसार, केवल तीन ही पहर हैं, अर्थात् एक रात तीन भागों में विभक्त की गई है। पहले और तीसरे में स्मरण, (प्रार्थनाओं का) जाप, और ध्यान किया जाता है; और मध्य-वर्ती पहर में भिक्षुगण, अपने विचारों को बांधकर (या, एकाग्रता के साथ) सोते हैं। रोग की अवस्था को छोड़कर, जो ऐसा नहीं करते वे नियम को भंग करने के अपराधी ठहरते हैं, और यदि वे इसे पूजा-भाष से करते हैं तो इससे उनका अपना और दूसरों का भला होता है।

[ २८ ]

## पूजा की पवित्र वस्तुओं को साफ़ करने में आचित्य के नियम

तीन पूज्यों (तीन रत्नों) की पूजा से बढ़कर और कोई पूजा विनीत और पूर्ण प्रज्ञा के लिए चार आर्य-सत्त्वों के ध्यान से उच्चतर और कोई सङ्क (हेतु) नहीं। परन्तु इन सत्त्वों के अर्थ इतने गम्भीर हैं कि वे गैवार लोगों की समझ से दूर हैं, परन्तु पवित्र प्रतिमा (अर्थात् मृद्ध की मूर्ति) को सब कोई स्नान करा सकता है। यद्यपि गुह्यदेय निर्वाण को प्राप्त हो चुके हैं, परन्तु उनकी प्रतिमा मौजूद है और हमें आस्था के साथ उसका पूजन करना चाहिए, जैसे कि हम उन्हीं के सामने हों। जो लोग उसे निरन्तर धूप और पुष्प चढ़ाते हैं, उनके विचार पवित्र हो जाते हैं और जो लोग उत्तरी मूर्ति को सदा स्नान कराते हैं, वे अन्धकार\* में सपेटने-वाले अपने पापों को दवाने में समर्थ हो जाते हैं। जो लोग अपने आपकी इस काम में लगाते हैं, उन्हें अदृश (अविज्ञप्त) पुरस्कार मिलेंगे, और जो लोग दूसरों को इसके करने का उपदेश देते हैं, वे वृक्ष (विज्ञप्त) कर्म से अपना तथा दूसरों का भला करते हैं। इसलिए जो लोग पुण्योपाजन

\* मूलार्थतः 'आलस्य से उपजा हुआ कर्म';

की कामना रखते हैं, उन्हें अपने मन को इन कमरों के करने में व्यस्त चाहिए ।

भारतीय बिहारों में, जब भिक्षु लोग अपराह्न में प्रतिमा को स्नान कराने जाते हैं, तब घोषणा के लिए कर्मदान घंटा बजाता है । बिहार के आंगन में एक जड़ाऊ छत्र तानने, और मंदिर के पार्श्व में दुर्गा जल के घड़े पवित्रियों में रखने के पश्चात् सोने, चाँदी, ताँबे, या पत्थर । एक मूर्ति उसी पानु के आसन में रखी जाती है, और लड़कियों का बाल वहाँ बाँधा जाता है । फिर मूर्ति का मुग्ध से अभिषेक का उत्तर मुग्धित जल डाला जाता है ।

मुग्ध इस प्रकार तैयार की जाती है—कोई मुग्ध का कूल, कि चन्दन की लकड़ी या एलवा की लकड़ी लेकर एक चिपटे पत्थर पानी के साथ पीसो, यहाँ तक कि इसका कोयल बन जाय, तब इसे पत्थर मलकर उसे पानी से धो डालो ।

यों चकने के बाद, इसे साफ़ सफेद कपड़े से पोंछ दिया जाता है; बिहार मंदिर में रख दी जाती है, जहाँ सब प्रकार के मुग्ध पुष्प बूझा जाते हैं । यह प्रक्रिया बिहार में रहनेवाले भिक्षु कर्मदान के प्रथम में करते हैं ।

बिहार के अकेले कमरों में भी भिक्षु लोग प्रतिदिन मूर्ति को दो सावधानी से स्नान कराते हैं कि कोई भी प्रक्रिया छूटने नहीं पाती सब पुष्पों के विषय में मुनि । किसी भी प्रकार के फूल, दूर्गों से बचीयों से लेकर चढ़ाये जा सकते हैं । मुग्धित फूल सभी आनुओं । निरन्तर खिलते हैं और अनेक लोग ऐसे हैं जो बाजारों में उन्हें बेचते हैं ।

ताँबे की मूर्तियों को, चाहे वे बड़ी हों या छोटी बारीक राख व ईंटों के बूँत के साथ रगड़कर और उत्तर पर गुड़ मल डालकर, चमकाया चाहिए, यहाँ तक कि वे दर्पण के समान पूर्ण रूप से स्पष्ट और मुग्ध हों जायें । बड़ी मूर्ति को मात के मध्य और अस्त में सारा भिक्षु-संघ स्नान कराये और छोटी मूर्ति को, यदि सम्भव हो तो, प्रतिदिन प्रत्येक भिक्षु

उठेना चाहते । ऐसा करने में मनुष्य छोटे स्तर में बड़ा पुनः प्राप्त कर सकता है ।

जिन उन में मूर्ति को स्थापित करता था तथा है, उन उन को यदि दो वेदियों पर लेकर फिर पर डाल दिया जान तो वह भूमि मनुष्य का अन्तःकरण है, जिसमें मनुष्य सौभाग्य की कामना कर सकता है । मूर्ति पर चढ़ते हुए पुतों को न तो संप्रदाय चाहिए, और न, जब वे उठा भी लिये जायें, उन्हें न पीढ़ के पीछे रोकना चाहिए; उन्हें तो एक स्थिर स्थान में अलग रख देना चाहिए । भिक्षु के सारे जीवन में ऐसा कभी न होना चाहिए कि वह मूर्ति को स्तब्ध कराना भूल जाय और यदि वह उन सुन्दर पुतों की भी चढ़ते ही परवा नहीं करता, तो वह क्यों लोगों में जाते जाते हैं, तो योंही है । उनके पुतों को बुनने और मूर्तियों को मढ़ाने के कष्ट में बचकर, केवल उद्यानों और मरोवरों को देखने तथा विधान करने हुए हों, जानकी और सिद्धि न हो जाना चाहिए और न उनके पुतों के बनने को केवल सौन्दर्य और लाभार्थ उपायना करके अपनी पुता की आत्मसन्तुष्टि समझ कर देना चाहिए । यदि ऐसी अवस्था होगी तो वह और सिद्धि की परम्परा दृढ़ जानकी और पुता की रीति आत्म-ध्यान के अनुसार न होगी ।

भारत में भिक्षु और लाभार्थ मोक्षमार्ग के चाल या मूर्तियाँ बनाने हैं, अथवा रोजाना या हफ्ते पर बुद्ध की प्रतिमा छानते हैं और वहाँ क्यों वे जाते हैं, बढ़ाया बढ़ाकर उसका पुनः करते हैं । कर्म-धर्मों के सिद्धि बनकर और उन्हीं इष्टों के साथ लेकर बुद्ध के स्तूप बनाते हैं । कर्म-धर्मों के इन स्तूपों की एकान्त मंदिरों में बनाकर छोड़ जाते हैं और वे फिर-फिर से उभर ही जाते हैं । इन प्रकार की सभी मनुष्य पुता की चोटें बनाने में लगे रहते हैं । फिर जब मोक्ष मोने, चारों तरफ, छोटे, भिक्षु, साधु, इष्टों और पत्थर की प्रतिमाएँ और चाल बनाते हैं, अथवा लड़के शिखर बाहुका (सुनारों के बाहु-रहित) का डेर लगाते हैं तब



## स्तोत्रगान-प्रक्रिया

बुद्ध के नामों का उच्चारण करके उसकी पूजा करने की रीति दिव्य भूमि (चीन) में लोग जानते हैं, क्योंकि यह प्राचीन समय से चली आ रही है (और इसका अनुष्ठान किया जा रहा है) परन्तु बुद्ध का गुणानुवाद करके उसकी स्तुति करने की रीति का प्रचार यहाँ नहीं रहा। शेषोक्त रीति प्रयत्नोक्त से अधिक महत्त्व की है, क्योंकि वास्तव में, केवल उसके नामों का सुनना ही उसके ज्ञान की स्पष्टता का अनुभव करने में हमें सहायता नहीं देता; किन्तु वर्णनात्मक स्तोत्रों में उसका गुणानुवाद करने से हम समझ सकते हैं कि उसके गुण कितने बड़े हैं। पश्चिम (भारत) में भिक्षु लोग चर्य-वन्दन और साधारण पूजा तीसरे पहर देर से या सायंकाल सन्ध्या-समय करते हैं। सभी एकत्रित भिक्षु अपने विहार के द्वार से बाहर निकलकर, धूप और पुष्प चढ़ाते हुए, स्तूप की तीन बार प्रवक्षिणा करते हैं। वे सब घुटनों के बल बैठ जाते हैं, और उनमें से अच्छा गानेवाला एक भिक्षु, श्रुतिमधुर, दृढ़ और मंजुल स्वर से गुरुदेव के गुणों का वर्णन करनेवाला स्तोत्र गाना आरम्भ करता है, और दस-बीस श्लोक गाता है। तब वे क्रमशः विहार के उस स्थान में लौट आते हैं, जहाँ वे साधारणतया इकट्ठे हुआ करते हैं। जब वे सब बैठ जाते हैं तब एक सूत्र-पाठी, सिंहासन पर चढ़कर, एक छोटा-सा सूत्र पढ़ता है। यथोचित परिमाण का सिंहासन प्रधान भिक्षु के समीप रक्खा जाता है। ऐसे अवसर पर जो धर्मग्रन्थ पढ़े जाते हैं। उनमें से 'तीन भागों में पूजा' \* प्रायः उपयोग में लाई जाती है। यह पूजनीय अद्वयघोष का किया हुआ संग्रह है। पहले भाग में, जो दस श्लोकों का है, तीन पूज्यों (श्रित्त) की स्तुति का भजन है। दूसरा भाग बुद्ध-वचनों की बनी हुई कुछ पवित्र पुस्तकों का संग्रह है। स्तोत्र के बाद, और बुद्ध के वचनों के पाठ के बाद, पूजा के

\* मूलार्पणः तीन बार सोली हुई पूजा।



के लिए पूजा केवल अन्तः-आत्म ही हो सकती है। इसलिए रीति यह है कि प्रतिदिन एक स्तोत्र पढ़नेवाले को भोग जाता है। यह एक स्थान में दूसरे स्थान पर भजन पढ़ा हुआ घूमता है। उसके आगे-आगे धूप और कुल गिरे हुए विहार के साधारण मेयक और बरबे, जाते हैं। वह एक मनुष्यात्मा से दूसरे में जाता है, और प्रायेण में पूजा के भजन पढ़ता है। वह हर बार उच्च स्वर से मन्त्र पढ़ने शीघ्र बोलता है और उसकी आवाज धारों और सुनाई देती है। संन्यास-आत्म यह इस कर्तव्य की समाप्ति कर देता है। इस स्तोत्रपाठ की विहार की ओर से प्रायः कोई विशेष पूजा (भेंट) दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे मनुष्य हैं, जो पण्ड-कुटी (मंदिर) की ओर मुंह किए, अर्थात् बैठे हुए, हरण में कुछ का पुनर्जात करते हैं। कुछ दूसरे लोग ऐसे हैं, जो मंदिर में जाकर (एक छोटे से दल में) अपने शरीरों की सौधा रखने हुए एक-दूसरे के साथ घुड़नों के बल बैठ जाते हैं, और अपने हाथों की पृष्ठों पर रखकर, अपने नितों से पृष्ठों की छूने हैं, और इस प्रकार 'विद्युत्पित्त बन्धना' करते हैं। ये हे पूजा की विधि की परिचय में (अर्थात् भारत में) प्रचलित है। बड़े और दुर्लभ भिक्षुओं को पूजा करने समय छोटी-छोटी बटाइयों का उप-योग करने की जाता है। अन्तिम (बीत में) कुछ की प्रशाना के भजन विरहात् से विद्यमान है, परन्तु व्यावहारिक प्रयोजन के लिए उनके उपयोग की रीति भारत (मुगलान्क 'इल्लहाद्') में प्रचलित रीति से कुछ भिन्न है।

यह सब है कि जब स्वर की बहुत सम्भा कर दिया जाता है, तब पढ़ने हुए भजन का अर्थ समझना कठिन होता है। परन्तु एक नियम

---

\* वे उदात्तक की भिक्षु के निवास पर मुख्यतः अस्मिन्-अस्मिन् के व्यवहार के लिए जाते हैं, और जिनकी इच्छा करने बाद मुद्राते और बाधा बोला पढ़ने की होती है, बरबे (अर्थात् मन्त्र) कहलाते हैं।





उन्ने उनकी प्रशंसा में स्तोत्र बनाये थे । परन्तु इन बात का क्या मत करने पर कि उन्ने ज्ञान की भाँखियाँ ही चुकी हैं, वह रंगार रोगा-रुग्णर बीड़-धम्म का अनुयायी बन गया, और सामाजिक विनाशों से मुक्त हो गया । वह दुष्टा दुष्ट की प्रशंसा तथा कीर्ति-मान में ही अपना रक्षा और अपने विपत्ति पलों के लिए परचारा बन गया था । तब से वह दुष्ट के उत्तम दृष्टान्त पर चलने का अभिलाषी रह गया था, और उसे रोह होना था कि मैं धर्म गुरु (दुष्ट) की बेधम प्रशंसा ही रोक गया हूँ, स्वयं उन्ने इसमें नहीं कर सका, इन भविष्य कथन (प्रावचन) की संविद्धि में उन्ने अपने पूरे साहित्यिक बल से दुष्ट के अनुयायियों की प्रशंसा के भजन चिते ।

उन्ने अपने एक चार सौ श्लोकों का स्तोत्र बनाया, और तत्पश्चात् एक दूसरा सौ सौ श्लोकों का । वह प्रायः छः पारसियों का दर्शन और बलवान् दुष्ट के उत्कृष्ट गुणों की व्याख्या करता है । ये मनोरंजक तथा सुन्दरता में स्वर्णयुक्त पुरानों के समान हैं, और उन्ने बौद्ध उच्च शिक्षित साहस्य में धर्म के उच्च शिखरों की प्रशंसा करता है । जड़भूट भारत में जो भी स्तोत्र बनाता है वह, उसे साहित्य का निरा मनमोह, उन्ने की शैली का अनुकरण करता है । यहाँ तक कि बौद्धिन्त्य बर्मा और अनुगम्य देश के मनुष्यों ने भी उनकी बड़ी प्रशंसा की है ।

सर्वत्र भारत में यह शक्ति है कि निम्न बननेवाले प्रत्येक मनुष्य को, क्यों ही वह पाँच और दस शीत गुना सहता है, मानवों के दो भजन लिखना शिखे जाते हैं । यह धर्म महापान और हीनपान दोनों सम्प्रदायों में प्रचलित है । इसके छः कारण हैं । पहले, इन श्लोकों में हमें दुष्ट के महान् और मनोरंजक गुणों का ज्ञान हो जाता है । दूसरे, उन्ने हमें श्लोक बनाने का दममान





में याद कर लेते हैं, परन्तु बहुत धक्के भगत आयु-पर्यन्त इसे अपने अध्ययन का एक विशेष विषय बना रखते हैं। जिस प्रकार, चीन में, मुक्त भिक्षु गण अवलोकितेश्वर के विषय में सूत्र (सद्धर्म-सुगन्धीक में अध्याय ११) और बुद्ध का अन्तिम उद्घोष (संक्षिप्त महापरिनिर्वाणसूत्र) पढ़ते हैं। ज्ञानकमाला नामक इसी प्रकार का एक दूसरा ग्रन्थ है। ज्ञानक का अर्थ है 'पूर्व जन्म', और 'माला' का 'हार'; भाव यह है कि शीवि-मन्त्र (पीछे से बुद्ध) के पूर्व जन्मों में तिये हुए कठिन कर्मों की कषायों एक स्थान में पिरोई गई हैं। जन्म-कषायों की रचना पद्य में करन का उद्देश्य एक सुन्दर शैली में, जो सर्वसाधारण की प्यारी और वाठकों की चित्ताकर्षक मालूम हो, सार्वत्रिक मोक्ष की शिक्षा देना है। एक बार राजा शालादित्य\* ने, जिसे साहित्य से अत्यन्त प्रीति थी आता थी— हे कविना के अनुरागियों, कब जबसे अपनी कुछ कविताये लाकर मुझे दिखायाओ।' जब उसने उन्हें इकट्ठा किया तब उसी रात को गठारियां बनीं, और परोक्षा करने पर, जान बूझ कि उनमें से बहुत सी ज्ञानक-मालाएँ हैं। इस वृत्तात्मक से सम्बन्ध समझता है कि ज्ञानकमाला प्रज्ञात्मक कविताओं के लिए सबसे सुन्दर (त्रिप) विषय है। राजा शालादित्य ने बाधिमन्त्र जीमूतवाहन की कथा को, जिसने एक नाग के स्थान में अपना आपको लीव दिया था, इच्छोकबद्ध किया था। इस अनुवाद को मङ्गल (सम्भाषण, तार भी बान्पुरी) का रूप दिया गया था। वह इसे बाधों के साथ गवाता था और साथ-साथ मृग्य और अभिनय भी हुआ था। इस प्रकार उसने इसे अपने समय में सर्वप्रिय बनाया। महाभारत चरित्र (मुन्नाथक: 'बग्न अभिचारी', सम्भवतः चरित्र-भाग) में जो पृथ्वी भारत में एक विद्वान् सम्बन्ध था, राजा विशाल्वर के विषय में, जिसे अक्षतक मुद्रान कहा जाता है, एक काव्यमय लीन की रचना की और भारत के राज्यों देशों में सभी लोग इन गानों का पढ़ने लगे।

अपनी ही भी कुछ कष्टमान होकर और अत्यन्त-दुःखमय किया था।  
 अपने बहुत-से मित्रों को भी मरवा था। इस विपत्ती में पाप का यह अनुहार  
 किया जाय तो इसके एक से अधिक दुःख-मयद बन जायेंगे। इसमें  
 अत्यन्त के दर्शन के—एक समय में फिर कुछ दूर अभी अत्यन्त  
 में ही था, मानव दुःखों की दृष्टि के भीसे उनके अविश्वस्य समय तक—एक  
 सिद्धांतों और बातों का दर्शन है। इस प्रकार सभी पदार्थों एक ही  
 दृष्टि में बना दी गई है।

यह मानव के दोषों भालों और दृष्टि की साधन के दोषों में सर्वत्र दृष्ट  
 या माना जाता है। यह दोषों में सभी में अनेक प्रकार के शब्दों और भाव  
 मार होता है, जिसमें पाठक के मन की बड़ा अत्यन्त प्राप्त होता है और  
 यह दृष्टि की दृष्टि-माने पदार्थ नहीं। इसके अतिरिक्त, इस दुःख  
 की दृष्टि एक दुःख-माने समझना चाहिए, क्योंकि इसमें थोड़ा सिद्धांत  
 नक्षित रूप में दिखे हुए है।

[ ३० ]

## विधिविग्न वन्दना

वन्दन के विषय में स्पष्ट नियम हैं। दिन और रात में साधारण  
 उपरतना-विषय अत्यन्त करना ठीक है। इसके लिए या तो पुनर्  
 में हृदय-रहित दिवाने चाहिए, या एक कमरे में बुद्धिमान निवास करने  
 हुए भिक्षा लाना, पुनर्द्वारे को पूरा करना और मानव-मानव के विद्वान्त  
 पर आधारित करना चाहिए। और उचित यह है कि केवल तीन बपड़े  
 (त्रिचोदर) धारण किए जायें और विज्ञान की कोई वस्तुएं न रखी  
 जायें; संसार के प्रतीकनों से भावने हुए अनुष्ठान की सदा मोक्ष का ही  
 ध्यान रखना चाहिए। सम्प्रदाय के एक ही नियम और दृष्टि की  
 विधि रीतियों से करना ठीक नहीं है। भिक्षु का बोला वहनेवाले  
 अनुष्ठान के लिए बाधार-रहित स्थानों में साधारण भक्तियों की प्रमाण  
 करना भी ठीक नहीं। विनय-पुस्तकों में ऐसे आचरणों का निर्देश है।



हैं। यह मनुष्य को व्यवहार में निरालम्बर राज्य के अनुभव बनाता और उसे निर्वासन प्रदान करता है।

‘व्यवसाय-राज्य’, ‘मर्त्यो मर्त्यो मर्थाई’, ‘संवृति-राज्य’, ‘गोप या छिपी हुई मर्थाई’। पुमाने अनुवादकों में शोधोपन का अर्थ ‘सांसारिक मर्थाई’ किया है, परन्तु हमारे मूल में अर्थ पुनः रूप में प्रकट नहीं होने। अर्थ यह है कि मानवराज्य माने वास्तविक अवस्था को छिपा लेती है, उदाहरणार्थ, पड़े जंगी प्रयोग करने में, पातल में बेचल मिट्टी होती है, परन्तु फाँट भूटे विशेषण में उसे छड़ा समझते हैं। शब्द की अवस्था में सब सफुर स्वर शब्द ही है, पर लोग भूल में उसे गीत समझते हैं। बेचल वास्तविक बुद्धि ही बाम करती है, और कोई व्यक्ति विषय नहीं है। परन्तु अविद्या बुद्धि को टंक देती है, और एक विषय के अनेक रूपों की माया-मयी सृष्टि होती है। ऐसी अवस्था होने से मनुष्य नहीं जानता कि मेरी अपनी बुद्धि क्या है, और यह समझता है कि वस्तु का अस्तित्व मन से बाहर है। उदाहरणार्थ, मनुष्य अपने सामने पड़ी हुई रस्ती को साँप समझ सकता है। इस प्रकार साँप की रूपना भ्रान्ति से रस्ती के साथ लगा दी जाती है, और सच्ची बुद्धि घमरने से बन्द हो जाती है। इस प्रकार मयायिता या सच्ची अवस्था का (भ्रान्त सम्बन्ध से) टंक जाना ‘संवृति’ कहलाता है।

व्याकरण को संस्कृत में शब्द-विद्या कहते हैं। यह पाँच विद्याओं में से एक है; शब्द का अर्थ है ‘वाणी’, और विद्या, ‘विज्ञान’।

\* इसे ‘शब्दानुशासन’ भी कहते हैं। म० दत्त।

† पाँच विद्यायें ये हैं—(१) शब्दविद्या, अर्थात् व्याकरण और अभिधान-रचना, (२) चित्तस्थानविद्या, (३) चिरित्ताविद्या, (४) हेतुविद्या, और (५) अष्मात्मविद्या।





क. गान विभक्तिर्मा । प्रत्येक संज्ञा की गान विभक्तियाँ, और प्रत्येक विभक्ति के तीन वचन होते हैं, अर्थात् एकवचन, द्विवचन और बहुवचन; इसलिए प्रत्येक संज्ञा के मध्य मिलाकर इकट्ठी रूप होते हैं। उदाहरणार्थ, शब्द 'पुरुष' की नीति। यदि एक पुरुष में तात्पर्य हो तो यह 'पुरुषः' होता, दो हों तो 'पुरुषौ' और तीन (या अधिक) हों तो 'पुरुषाः'। संज्ञा के इन रूपों को गुरु और लघु (सम्भवतः, 'स्वरपुञ्ज और स्वरहीन'), या सुले सांस से और बन्द सांस से उच्चारण विधि जानेवाले (शायद 'सुली स्वरवाली या बन्द स्वरवाली संज्ञाएँ') भी कहा जाता है। सात विभक्तियों के अतिरिक्त आठवीं—सम्बोधन (आमन्त्रित)—भी है, जो आठ विभक्तियों पूरी कर देती है। जैसे पहली विभक्ति के तीन वचन हैं, वैसे ही बाकी सबके हैं। इनके रूप बहुत ज्यादा होने से यहाँ नहीं दिये गये। संज्ञा सुबन्त कहलाती है और (परतिष्ठि से) इसके (३ × ८) षोडश रूप होते हैं।

ख. दस सकार । (क्रिया के कालों के लिए) स के साथ दस चिह्न हैं; क्रिया की रूपतिष्ठि (मूलार्थतः उच्चारण) में तीन कालों, अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य का भेद प्रकट किया जाता है।

ग. अठारह तिङ् । ये (क्रिया के तीन वचनों के) उत्तम, मध्यम, और प्रथम पुरुष के रूप हैं और योग्य और अयोग्य, या इस और उस\* के भेद दिखाते हैं। इस प्रकार (एक काल में) प्रत्येक क्रिया के अठारह भिन्न-भिन्न रूप हैं, जो तिङन्त कहलाते हैं।

द. धेन-ध (मण्ड या मुण्ड में) (धातु की एक या अनेक प्रत्ययों से) संयुक्त करके शब्दों के मनाने का वर्णन है। उदाहरणार्थ, संस्कृत में पेड़

\* यहाँ 'आत्मनेपद और परस्मैपद' होना चाहिए था। 'यह और वह' शायद 'आत्मने' और 'परस्मै' को प्रकट करने की एक अस्पष्ट रीति हो; क्योंकि धीनी में इन परिभाषाओं के लिए कोई पदार्थ नहीं। फिर भी, 'योग्य और अयोग्य' बहुत विविध हैं।



निर दून्ने विषय; यदि ऐसा न होगा तो उनका पश्चिम पक्ष दिया जायगा। ये सब उच्च इच्छाएँ होने चाहिए। परन्तु यह नियम उच्च बुद्धि के लोगों के लिए ही लागू है। मध्यम या धोड़ी योग्यता के मनुष्यों के लिए उनकी इच्छाओं के अनुसार एक भिन्न उपाय (विधि) का अध्ययन करना चाहिए। उन्हें दिन-रात घोर पश्चिम के साथ अध्ययन करना, और एक पल भी व्यर्थ के विध्यामयन सोना चाहिए।

यह ब्रह्म-भूत पण्डित जयादित्य\* की रचना है। यह बहुत बड़ी योग्यता का मनुष्य था; उसकी साहित्यिक शक्ति बहुत आश्चर्यजनक थी। यह बात को एक ही बार सुनकर ममभ्र सेना था, उसे दुबारा निखाने का प्रयोजन नहीं होता था। यह तीन पूज्यों (अर्पान् विरत्त) का आदर करता था और सदा पुण्य-कर्म किया करता था। उसकी मृत्यु हुए आज कोई तीस वर्ष हुए हैं (सन् ६६१-६६२)। इस ब्रह्म का अध्ययन कर चुकने के पश्चात्, विद्यापी गद्य और पद्य की रचना सीखना आरम्भ करते हैं और हेतुविद्या तथा अभिधर्म-कोष में लग जाते हैं। न्याय-द्वार-तारक-शास्त्रों के अध्ययन से वे ठीक तौर पर अनुमान करते हैं; और जातकमाला के अध्ययन से उनकी ग्रहण-शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार अपने उपाध्यायों से शिक्षा पाते और दूसरों को शिक्षा देते हुए वे प्रायः मध्य भारत के मालव-विहार में, या पश्चिमी भारत के बलभी (बला) देश में दो-तीन वर्ष बर्ताते करते हैं। ये दोनों स्थानों में प्रसिद्ध और प्रवीण मनुष्य

\* हमने वामन के साथ भिन्नकर वागिकावृत्ति की रचना की थी। वागिका का मूलपाठ बनारस-मस्कृत-कालेज में हिन्दू-धर्म-शास्त्र के महोपाध्याय पण्डित बालशास्त्री ने (१८७६, १८७८) प्रकाशित किया था। बालशास्त्री ने १, २, ५ और ६ जयादित्य के और शेष वामन के दृष्टांत हैं।

† यह नागार्जुन की बनाई हुई हेतुविद्या की भूमिका है।



एक ही प्रकार का व्यवहार की रचना है। फिर, इनमें भी एतने मूल (परिचित) और अत्यन्त बड़ों की व्याख्या (मूलार्थक भाग की व्याख्या) और इनमें बहुत-से विचारों का विवेचन किया गया है, और यह अनेक विचारों को मान्य करने, विचारों की रचना करने है। और विचारों को जो जो बड़े में मान्य लेते हैं।

## ७ मनुस्मृति-शास्त्र

इसमें अत्यन्त मनुस्मृति-शास्त्र है। यह धर्मशास्त्र धर्म की व्याख्या है और मनुस्मृति नाम के एक राजा विद्वान् की रचना है। इसमें २५,००० श्लोक हैं और मानव-जीवन तथा व्यवहार-शास्त्र के विचारों का पूर्ण रूप में वर्णन है। यह अनेक बंधों के उत्पन्न और धर्म के कारणों में बतलाते हैं। इसका विद्वान् के विद्वान् में अनेक भाषा में टीका है और इनमें हेतु तथा उत्तर पर बड़े-बड़े विचार हैं। यह विद्वान् मानव के पाँचों संसारों में सर्वत्र बहुत प्रसिद्ध है और उनकी शिक्षाओं को लोग सब कहते (अनेक शिक्षाओं में) मानते

मनुस्मृति का अर्थ है मानव और इसका अत्यन्त व्यवहार व्यवहार की व्याख्या के नाम के रूप में होता है। निम्नलिखित इसका समस्त व्यवहार के मनुस्मृति का नाम मनुस्मृति की ओर है।

\* यह मनुस्मृति मानव के व्यवहार की व्याख्या कहते हैं। इसका अर्थ है मनुस्मृति का अर्थ है मनुस्मृति की व्याख्या कहते हैं। यह मनुस्मृति का अर्थ है मनुस्मृति की व्याख्या कहते हैं। यह मनुस्मृति का अर्थ है मनुस्मृति की व्याख्या कहते हैं। — मनुस्मृति ।

\* इस नाम का अर्थ है मानव और इसका अत्यन्त व्यवहार व्यवहार की व्याख्या के नाम के रूप में होता है। निम्नलिखित इसका समस्त व्यवहार के मनुस्मृति का नाम मनुस्मृति की ओर है।



धि गृहस्थों में लौट जाने की हुई। परन्तु यह दृढ़ रहा और उसने एक विद्यार्थी को मठ के बाहर एक गाड़ी सारने को कहा। कारण पूछने पर उसने उत्तर दिया—‘यह वह स्थान है जहाँ मनुष्य पुण्य-कर्म करता और यह उन लोगों के निवास के लिए है जो शील रखते हैं। अब मेरे भीतर मनोरोग पहले ही प्रदल हो चुका है और मैं सर्वोत्तम धर्म पर चलने में असमर्थ हूँ। मेरे जैसे मनुष्य को प्रत्येक प्रदेश से यहाँ आये हुए परिव्राजकों की सभा में घुसना नहीं चाहिए।’

तब वह उपासक को अवस्था में बापस चला गया और मठ में एतेहुए, एक श्वेत वस्त्र पहनकर, सच्चे धर्म की उन्नति और वृद्धि करता रहा। उसकी मृत्यु हुए घालीत वर्ष हुए हैं (सन् ६५१-६५२)।

## ८ वाक्य-पदीय

इनके अतिरिक्त वाक्य-पदीय हैं। इसमें ७०० श्लोक हैं, और इसका टीकाभाग ७,००० श्लोकों का है। यह भी भर्तृहरि की ही रचना है। यह पवित्र शिक्षा के प्रमाण-द्वारा समर्थित अनुमान पर, और ध्याति-निश्चय की मुक्तियों पर, एक प्रबन्ध है।

पाठों के मिलाने के बाद, जाननी संस्करण ने ‘धर्मपाल’ रखा है, और एक ही पुस्तक में मिलनेवाले ‘धर्म के अनेक उपाध्याय’ पाठ को छोड़ दिया है। ‘धर्मपाल’ पाठ के विषय में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं। दुर्भाग्य से न० फूर्वीर्वाणा के पास एक बुरी पुस्तक थी, और उसने अनिश्चित रूप से अनुवाद किया है। ऊपर का लेख लिख चुकने के बाद मैंने देखा है कि काश्यप के पाठ में ‘शास्त्र का एक उपाध्याय, ‘धर्मपाल’ है। इससे भी हमारे पाठ धर्मपाल की पुष्टि होती है, और किसी सन्देह की गुञ्जाइश नहीं रह जाती।





प्रकट हुआ करते हैं। उसी उपमा सूर्य और चन्द्र से होती है, या उन्हें नाग और हाथी\* की तरह समझा जाता है। पहले समय में नागार्जुन, देव, अय्योय; मध्यकाल में वसुबन्धु, अतल्ल, सल्लभ और भवविदेक; और अन्तिम समय में जिन धर्मपाल, धर्मशीति, शीलभद्र, सिंहबन्ध, स्मिरमणि, गुणमणि, प्रज्ञागुप्त ('मतिपाल' नहीं), गुणप्रभ, जिनप्रभ (या 'परमप्रभ') ऐसे मनुष्य थे।

इन महोपाध्यायों में से किसी में उपर्युक्त प्रकार के सद्-गुणों में से किसी एक की भी, चाहे वह सांसारिक हो या धार्मिक, कमी नहीं। ये मनुष्य लोग से रहित होकर, आत्मसन्तोष का अभ्यास करते हुए, अनुपम जीवन बिताते थे। ऐसे धर्म के मनुष्य नास्तिकों अपना इनसे लोगों में बहुत कम पाये गये हैं।

[इ-स्तिल्ल की टीका]—इनके जीवन-चरित, भारत के इन धर्मशील मनुष्यों (या भक्तों) की 'जीवनी' (जिन—जिनप्रभ) में सविस्तर दिये गये हैं।

धर्मशीति ने ('जिन' के परचातु) हेतुविद्या को और सुधारा; गुण-प्रभ ने विनय-पिटक के अध्ययन को दुबारा लोकप्रिय बनाया; गुणमणि ने अपने आपको ध्यान-सम्प्रदाय के अर्पण कर दिया और प्रज्ञागुप्त (मति-पाल नहीं) ने सभी विद्वानों की काखें भरके सच्चे धर्म का प्रति-पादन किया। जिस प्रकार अमूल्य रत्न अपने सुन्दर बर्तों का प्रकाश शिस्तियों और अमार्ग सागर में करते हैं, जहाँ केवल हूल मछलियाँ ही रह सकती हैं; और जिस प्रकार अविषीय जड़ों-बूटियों अपने सर्वोत्तम गुण अपरिमेय उँचाईवाले गन्धनावन पर्वत पर उपस्थित करती हैं, उसी

---

\* व स्पष्ट कहा है कि वह 'नाग और हाथी' नहीं, किन्तु वह 'नाग-हाथी' है, क्योंकि सबसे अच्छे प्रकार का हाथी 'नाग' कहा जाता है। उसका मध्यम ऊँच जान पड़ता है; ऐसा ही पालि ने ऐसे नाग महानज्वा (ममन्-पानादिका; पृष्ठ ३१३) हैं।



में कुछ ऐसे दाहण रहते हैं जो १,००,००० मन्त्रों को सुना सकते हैं। प्रबल मानसिक शक्ति प्राप्त करने के लिए भारत में दो परम्परागत रीतियाँ हैं। एक तो, बार-बार कण्ठस्थ करने से बुद्धि विकसित हो जाती है; दूसरे, वर्णमाला मनुष्य के विचारों को स्थिर कर देती है। इस रीति से, दस दिन या एक मास के अभ्यास के अनन्तर, विद्यार्थी अनुभव करता है कि उसके विचार धरने के सदृश उठ रहे हैं, और जिस बात को उसने एक बार सुन लिया है उसे वह कण्ठस्थ कर सकता है (उसे दुबारा पूछने की आवश्यकता नहीं रहती)। यह कोई कल्पित कथा नहीं, क्योंकि मैंने स्वयं ऐसे मनुष्य देखे हैं।

पूर्वी भारत में चन्द्र नाम का (मूलार्थतः, 'चन्द्र-अधिकारी', शायद वह 'चन्द्रदास' हो) एक महापुरुष रहता था। वह बोधिसत्त्व के सदृश महानति था। जब मैं, इ-स्तिङ्ग, उस देश में गया था तब वह अभी जीता ही था। एक दिन एक मनुष्य ने उससे पूछा—'बीन-सा अधिक हानिकारक है, प्रलोभन या विष ?' उसने तत्काल उत्तर दिया—'वास्तव में, इन दो में बड़ा भेद है; विष केवल उसी समय हानिकारक होता है जब उसे खा लिया जाय, परन्तु दूसरे के चिन्तन-मात्र से ही मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है'।

शास्त्र-भातंग और धम्मरस\* ने पूर्वी राजधानी लो (होनन-ऊ) में सुत्तमाधार का प्रचार किया; परमार्थ† की कीर्ति दक्षिणी सागर (अर्थात् ननकिङ्ग) तक पहुँची थी, और पूजनीय कुमारजीव‡ ने विदेश (चीन)

\* ये चीन में पहले दो भारतीय बौद्ध थे; वे चीन में सन् ६७ में आए और उन्होंने अनेक मन्त्रों का अनुवाद किया। Nanjio's App. ii, 1 and 2.

† परमार्थ चीन में सन् ५४८ में आया, और उसने दक्षिणीय मन्त्रों का अनुवाद किया।

‡ कुमारजीव चीन में सन् ४०१ के लगभग आया, और उसने पश्चात् संस्कृत-मुद्रकों का चीनी में अनुवाद किया। Nanjio's App. ii 59, 104—105.

के सामने धर्मशीलता का आदर्श उपस्थित किया था। पीछे से भग्न-भ्रमाङ्ग स्वदेश में अपना व्यवसाय करता रहा। इन रीति के, पुरा और वर्तमान में, आचार्यों ने बौद्ध-धर्म की ज्योति (या 'बुद्ध के दूर') में दूर-दूर तक फैलाया है।

जो लोग 'भाव' और 'अभाव' के सिद्धान्तों को सीखने हैं उनके निस्वयं त्रिपिटक ही उनका गुरु होगा, और जो लोग ध्यान और प्रज्ञा अभ्यास करते हैं उनके परमदर्शक सात बोधि-अङ्ग\* होंगे।

पश्चिम में इस समय रहनेवाले (सबसे विख्यात) आचार्य ये हैं, - मानचन्द्र, जो धर्म का एक गुरु हैं, (मगध में) तिलङ्ग विहार में रहा है, मालम्ब विहार में रत्नसिंह, पूर्वी भारत में दिवाकर मिश्र†, और दक्षिणी प्रांत में, तयागतगर्भ रहता है। दक्षिणी सागर के श्रीमोक्ष।

\* बोधि के सात अंग, अर्थात् स्मरण, निरूपण उत्साह, हर्ष, प्रशान्ति चिन्तन और समचित्तता। इन्हें Childers, S. V. बोधकांक्षी Burnouf कमल, ७९९, Kasawara, परममह, ४९ महाभुत्तानि ३९

† तिलङ्ग विहार ह्यन्यसाङ्ग का निवास है (Juhen, Memoires, viii, 440, and Vie, iv 211)। इ-सिङ्ग इस विहार को मगध इत्यादि मालम्ब से दो योजन की दूरी पर लिखता है (देखें Chava nes, p. 146, note)। आधुनिक निम्नार, मालम्ब में पश्चिम में। Cf. Cunningham, Ancient Geography of India, i, 456.

‡ हर्षवरिण, (काशीरामम्बरण पृ० ४८८ तथा ४९७) ने एक दिवाकर मिश्र का बौद्ध मरणा के रूप में उल्लेख है। म० बुद्धिगीमा पुन से गुरुविष लिखता है। देखो बुद्धिद्वय, (Methode pour Decipherer les Noms Sanscrits, p. 70.)





२. विद्यासागर-विदित-विदित-शास्त्र-वाचिका (समुद्र-सूक्त) ।

३. महाभारत-संग्रह-शास्त्र-सूक्त (समुद्र-सूक्त) ।

४. अभिषेक (संग्रह-सूक्त) शास्त्र (समुद्र-सूक्त) ।

५. महाभारत-विभाग-शास्त्र (समुद्र-सूक्त) ।

६. निदान-शास्त्र (संग्रह-सूक्त) ।

७. महाभारत-संग्रह-शास्त्र (संग्रह-सूक्त) ।

८. बर्मन्ति-शास्त्र (संग्रह-सूक्त) ।

यद्यपि उपर्युक्त शास्त्रों में समुद्र-सूक्त के कुछ ग्रन्थ हैं, परन्तु (वीर-पदति में) सफलता अगस्त्य की मानी जाती है (इसलिए अगस्त्य के ग्रन्थों में समुद्र-सूक्त की पुस्तकों का समावेश है) ।

जो भिक्षु हेतुविद्या में अपने आपको विद्वान् करना चाहता है उसे 'जिन' के आठ शास्त्रों को सम्पूर्ण रूप से समझ लेना चाहिए ।

वे ये हैं—

१. तीन लोगों के ध्यान का शास्त्र (मिला नहीं) ।

२. सर्वलक्षणध्यान-शास्त्र (बारिका) (जिन-सूक्त) ।

३. विषय के ध्यान का शास्त्र (जिन-सूक्त) । सम्भवतः आलम्बन-प्रत्यय ध्यान-शास्त्र (नञ्जियो की मामावली, सं० ११७३) ।

४. हेतुद्वार पर शास्त्र (नहीं मिला) ।

५. हेतुभासद्वार पर शास्त्र (नहीं मिला) ।

६. व्यापद्वार (सारक)-शास्त्र (सागर-सूक्त) ।

७. प्रज्ञापति-हेतु-संग्रह (?) शास्त्र (जिन-सूक्त) ।

८. एकीकृत अनुमानों पर शास्त्र (नहीं मिला) ।

अभिषेक का अध्ययन करते समय उसे छः पादों- का सम्पूर्ण पाठ करना

० अभिषेक पर ये छः नियम हैं और इन सबका सम्बन्ध सर्वास्ति-पादनिकाम से है, मर्यादा १२७६, १२७७, १२८१, १२८२ १२९६ और १११७.









इन भ्रम में पड़े हुए वे पार पर पार करते चले जाते हैं। ये लोग सबसे नीच धोषी के हैं।

[ ३३ ]

## मृत्यु के पदचान् कार्यों का प्रपन्थ

मृतमिच्छु के कार्यों के प्रपन्थ की रीति का धिनय में पूर्ण रूप से वर्णन है। मैं यहाँ संक्षेप से बहुत आवश्यक बातें देता हूँ। सबसे पहले इस बात का पता लेना चाहिए कि कोई श्रम तो नहीं; मृत व्यक्ति कोई मृत पत्र तो नहीं छोड़ गया और समाधिस्थान में कौन उसकी सेवा करता रहा है। यदि ऐसी अवस्था हो तो सम्पत्ति का बंटवारा राजनिधन के अनुसार होना चाहिए। जो सम्पत्ति बच जाय उसे उचित रूप से बाँट देना चाहिए।

उदान (त्रिपिटक का एक भाग) का एक श्लोक है—

‘भूमि, घर, दूकानें, मिछीने की सामग्री,  
ताँबा, लोहा, धनड़ा, उस्तरे, बर्तन,  
कपड़े, छड़ियाँ, पशु, पेय पदार्थ, भोजन,  
औषधि, पत्तंग, तीन प्रकार की—  
बहुमूल्य वस्तुएँ, मोना, चाँदी, इत्यादि,  
विशिष्ट वस्तुएँ—बनी हुई या बिना बनी हुई;  
इनको, इनके गुणों के अनुसार, विभाज्य  
अथवा अविभाज्य ठहराना चाहिए।  
जगति-मूल्य वस्तु ने यह विधान किया था।’

इनका विशेष वर्णन इस प्रकार है—भूमि, घर, दूकानें, बिछाने की सामग्री, जनी आसन और लोहे या ताँबे के उपकरण बाँटे नहीं जा सकते। परन्तु शेषोक्त में से बड़े और छोटे लोहे के बटोरे, ताँबे के छोटे बटोरे, दरवाजों की चाँभियाँ, सूइयाँ, बरमे उस्तरे चाकू लोहे की छोइयाँ, काँसे की चाँचें, कुल्हाड़े, छेनियाँ इत्यादि और साथ ही उनकी धँसियाँ; मिट्टी







सम्प्रदाय = वे लोगों के दाट के लिए एक पुस्तकालय में रखा देना चाहिए। जो पुस्तकें धीढ़-धर्म की न हों उन्हें बेच टांग जाय, और (उनमें प्राण हुआ धन) उन समान निवाम करनेवाले भिक्षुओं में बाँट दिया जाय। यदि लेखपत्र और ठेके सत्कार्य देय हों तो (रपया) बसूल करके पटपट बाँट देना चाहिए; यदि ये सत्कार्य देय न हों तो लेखपत्र कोष में रखा छोड़ने चाहिए, और जब उनकी अवधि पूरी हो जाय, तब (रपया) सत्तु के उपयोग के सर्वण कर दिया जाय। सोना, चाँदी, गड़ा हुआ तथा बिना गड़ा हुआ माल, कौड़ियाँ (कपडे) और मुद्राएँ, धुनु, धर्म तथा सत्तु के लिए, तीन भागों में बाँट दी जाती हैं। धुनु का भाग मन्दिरों, उन स्तूपों—जिनमें पवित्र बाल या नाखून रखे हुए हैं—और अन्य छँदहरों के जीर्णोद्धार में व्यय किया जाता है।

धर्म का भाग धर्म-मुत्तरों की मजदूर कराने और 'सिंहासन' के निर्माण तथा सजावट में लगाया जाता है। दूसरा सत्तु का भाग मठ में रहनेवाले भिक्षुओं में बाँट दिया जाता है।

भिक्षु के छः परिष्कारों रोगी प्राणी को दिये जाते हैं। बाहरी की दूटी हुई चीजें उचित रूप से बाँट दी जायें।

इस विषय का सम्पूर्ण वर्णन बड़ी विनय में मिलता है।

[ ३४ ]

## सह की साधारण सम्पत्ति का उपयोग

सभी भारतीय विहारों में भिक्षु को बपड़े मठ में रहनेवाले भिक्षुओं (के सामने की पूंजी) से दिये जाते हैं। खेतों और उद्यानों की उपज





करता है\* । मोक्ष-मार्ग पर मनुष्य का सदैव जितना अधिक दृढ़तापूर्वक स्थिर होता है उतना ही उसका आन्तरिक ध्यान और ज्ञान बढ़ता है । बाहर से प्रेम और दया दिखाने से मनुष्य का मन मुक्ति-पाट की ओर जाता है । जो जीवन इस रीति से समाप्त होता है वह मर्योच्च है । भिक्षुओं के घोर विहार में रहनेवाले भिक्षुओं की साधने की सम्पत्ति में से दिये जाने चाहिए, और प्रत्येक वस्तु—जैसे कि बिछौने के कपड़े, इत्यादि—समान रूप में बाँटी जानी चाहिए और किसी एक ही व्यक्ति को नहीं दी जानी चाहिए; इस प्रकार उन्हें विहार की सम्पत्ति की रक्षा अपनी निज की सम्पत्ति से भी अधिक सावधानी से करनी चाहिए । यदि अनेक दान हों तो विहार की चाहिए कि बड़े को पुण्यार्थ दे के छोटे को रख ले । यह बुद्ध की श्रेष्ठ शिक्षा के अनुकूल है, क्योंकि उसने स्पष्ट कहा है—‘यदि तुम वस्तुओं का मर्योच्चन रीति से उपयोग करोगे तो तुममें कोई दोष न मिलेगा । तुम मर्योच्च रूप में अपना निर्वाह कर सोगे और धर्म-पूर्वक आजीविका की तलाश करने के बट्ट तथा व्यय से मुक्त हो जाओगे’ ।

विहार के लिए बहुत-सा धन, सड़े हुए अनाज से भरे हुए साते, अनेक दास और दासियाँ, शोषागार में दकड़ठा किया हुआ रूपा और खडाना रखना, और इनमें से किसी भी चीज का उपयोग न करना, जब कि सारे सदस्य निर्धनता से दुःख पा रहे हों, अनुचित है । बुद्धिमानों को सदा सत्वात्म्य का ठीक निरूपण करके उसके अनुसार आचरण करना चाहिए ।

कुछ विहार ऐसे हैं जो वहाँ रहनेवालों को भोजन नहीं देते, किन्तु, प्रत्येक वस्तु उनमें बाँट देते हैं और उन्हें अपने भोजन के लिए स्वयं उपाय करना पड़ता है । ऐसे विहार किसी परदेसी को वहाँ निवास करने

---

\* पुराने बौद्धों का ऐसा जीवन अभी इ-तिहास के समय में भी मौजूद था ।











